मनुस्मृति में वर्णित राज्य की अवधारणा : एक अध्ययन

डॉ0 सुशील कुमार*

प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था के विकास के अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि पूर्वकाल में अर्थात् मनु के समय एक ऐसा समय था, जब मत्स्य न्याय की बहुलता थी। जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को निगल कर अपना आहार बना लेती है, उसी प्रकार उस युग में सबल मनुष्य दुर्बल मनुष्यों को निरंतर कष्ट कर देते तथा नष्ट करते थे। उस समय जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ होती थी। मनुष्यों का जीवन अशांतमय था। मनुष्य एवं पशु में कोई अन्तर नहीं था। प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे का दुश्मन था। उस समय न राज्य था, न राजा थे, न ही कोई कानून था और न ही कोई न्याय व्यवस्था थी, न कोई अधिकार थे और न लोगों में कर्त्तव्य की भावना। उस समय सतत् संघर्ष एवं अराजकता की स्थिति थी। मानव जीवन एकाकी, दरिद्र, बर्बर, गन्दा, सीमित तथा निराशाजनक था।

इस पूर्वकालीन प्राकृतिक अवस्था में अराजकता की स्थिति से तंग आकर मनुष्यों ने अपना जीवन, स्वतंत्रता तथा सम्पति की सुरक्षा के लिए एक राजनीतिक संगठन अर्थात् राज्य की आवश्यकता महसूस की। प्राचीन अवस्था में राजनीतिक संगठन के न होने के कारण एक सबल राजा का अभाव था। गलत काम तथा अत्याचार करने वालों को देखने वाला कोई नहीं था। उस समय गलत काम करने वालों को दण्ड देने के लिए न कोई न्यायालय था और न ही विधि एवं दण्ड व्यवस्था थी। राजा, न्यायालय, विधि एवं दण्ड व्यवस्था की पूर्ति राज्यरूपी राजनीतिक संगठन में ही हो सकता है। लोगों ने यह अनुभव किया कि राज्य के होने से जीवन, स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति की सुरक्षा होगी तथा साथ ही साथ मनुष्य का विकास उसके जीवन के हर क्षेत्र में यथोचित होगा।

राज्य के उत्पत्ति संबंधी मत – प्राचीन भारत के सामाजिक व्यवस्था के इतिहास एवं मनुस्मृति को देखने से यह स्पष्ट होता है कि राज्य के उत्पत्ति के संबंध में मनु एवं कौटिल्य का विचार काफी तालमेल नहीं खाता है। कौटिल्य राज्य और राजा की उत्पत्ति साथ–साथ मानते हैं। अन्तर यह है कि मनु ने जहाँ राज्य एवं राजा के दैवीय सिद्धांत को स्वीकार किया है, वहीं कौटिल्य संविदा सिद्धांत को मान्यता देते हैं।

कौटिल्य के अनुसार राजा और प्रजा अपने कर्त्तव्य से बंधे हुए थे। दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के लिए वचनबद्ध थे। उन्होंने कहा है कि प्रजा के सुख में ही राजा को सुख है। प्रजा के हित मे उसका हित है, राजा का अपना प्रिय सुख नहीं है। प्रजा का सुख ही उसका सुख है। आचार्य कौटिल्य ने राज्य एवं राजा के संबंध में जो सिद्धांत दिये हैं, उससे स्पष्ट होता है कि वे लोकतंत्र के पक्षपाती थे। इन्होंने राजा को निरंकुश बनने से रोकने के लिए वित्तीय अधिकार प्रजा के हाथों सौंप दिया।

लेकिन प्राचीन ग्रंथों में भी राज्य की उत्पत्ति में ईश्वर की इच्छा को ही प्रधान माना गया है। मनु ने भी 'मनुस्मृति' में बताया है कि लोग अराजकता से दुःखी न हो, इसलिए उनकी रक्षा के लिए ईश्वर ने राजा को उत्पन्न किया। गीता में कृष्ण ने भी ऐसा ही भाव प्रकट किया है कि मनुष्यों में वे ही राजा है। महाभारत के शांतिपर्व में राज्य को ईश्वर की कृति कहा गया है।

राज्य के उद्देश्य – प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था के इतिहास एवं मनुस्मृति के अध्ययन के पश्चात् हम पाते हैं कि पूर्वकाल में भी राज्य का उद्देश्य महान था। तत्कालीन अराजकता की स्थिति से उबकर मानव ने एक उत्तम ढंग के राजनीतिक संगठन का निर्माण किया। उस प्राचीन युग में भी शांति, सुव्यवस्था, सुरक्षा और न्याय ही राज्य के मूल उद्देश्य समझे जाते थे। राजा को वरूण के समान धृत–व्रत, नियम और व्यवस्था का संरक्षक, साधुओं का प्रतिपादक, दुष्टों को दण्ड देने वाला होना चाहिए। धर्म का संवर्द्धन, सदाचार का प्रोत्साहन और ज्ञान संरक्षण प्रत्येक राज्य में उसी तरह से होना चाहिए। प्रजा की नैतिक उन्नति के साथ भौतिक उन्नति करना भी शासन–संस्था का काम था। वैदिक काल से 600 ई0 पू0 तक प्रजा का सर्वांगीण कल्याण ही राज्य का मूल लक्ष्य माना जाता था।

राज्य के अंग – मनुस्मृति के अंतर्गत हम राज्य और उसके प्रमुख तत्वों का उल्लेख पाते हैं। राज्य एवं उसके तत्वों के संबंध में मनु तथा कौटिल्य का समान विचार है। मनु एवं कौटिल्य दोनों का मत है कि राज्य एक सजीव सकारात्मक शासन संस्था है, मनमानी चाल चलने वाले, अपना ही भला देखने वाले विभिन्न कर्णों का ढीला–ढाला जोड़ नहीं है। इनके मतानुसार स्वामी, अमात्य, भू–प्रदेश, दुर्ग, कोष, दण्ड एवं मित्र राज्य के सात अंग है, जिनको सप्त–प्रकृतियाँ कहते है।

आधुनिक मतानुसार भू–प्रदेश, जनता, सरकार तथा संप्रभुता राज्य के चार तत्व माने जाते हैं। इसके अलावे एक पाँचवाँ तत्व भी स्वीकार किये गये है, वह है – आज्ञा का पालन की भावना अर्थात् जनता में आज्ञा का पालन की भावना का होना। इन तत्वों की तुलना हम सप्तांग सिद्धांत से करने पर हम पाते है कि स्वामी एवं अमात्य केन्द्रीय शासन के अंतर्गत हैं। जबकि भू–प्रदेश, दुर्ग, सेना और कोष राज्य के शासन सामग्री थे। दुर्ग एवं सेना राज्य की सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक थे। वहीं मित्र अर्थात् संबंधी की सहायता पर ही राज्य का अस्तित्व निर्भर है।

राज्य के कार्य – प्राचीन भारतीय इतिहास एवं स्मृतियों को देखने से स्पष्ट होता है कि विद्वानों ने राज्य के कार्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है तथा इसे दो श्रेणियों

***ग्राम–बिलाप, पो0–कुंजवाँ, भाया–बिहटा, जिला–पटना, बिहार**

में विभक्त किया है – आवश्यक कार्य तथा ऐच्छिक या लोकहितकारी कार्य। आवश्यक कार्य के अन्तर्गत वे सभी कार्य आते हैं, जो समाज के संगठन के लिए नितांत आवश्यक है, ये हैं – बाहरी शत्रु के आक्रमण से रक्षा, प्रजा के जानमाल का संरक्षण, शांति, सुव्यवस्था तथा दण्ड एवं व्यवस्था का प्रबंध। दूसरी ऐच्छिक या लोकहितकारी कार्य के अंतर्गत वे सब कार्य आते हैं, जैसे – शिक्षा, दान , स्वास्थ्य, रक्षा, व्यवसाय, डाक और यातायात का प्रबंध, जंगल और खानों का विकास, दीन–अनाथों की देख–भाल एवं सहायता आदि।

प्राचीन ग्रंथों द्वारा प्राप्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में राज्य केवल आवश्यक कार्यों से मतलब रखता था। वैदिक काल में राज्य बाहरी शत्रु का प्रतिकार और आंतरिक व्यवस्था तथा सामाजिक परम्परा का रक्षा करता था। वहीं धार्मिक ग्रंथ महाभारत एवं अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य के कार्य क्षेत्र में मनुष्य के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक क्रियाकलाप आ जाते हैं। राज्य का कर्त्तव्य था कि सभी धार्मिक मतों को अपने–अपने पथ पर चलने की पूरी सुविधा दे, सत्य, धर्म तथा सदाचार को पूरा प्रश्रय दे, समाज को उन्नति पथ पर ले चले, नयी बस्तियाँ तथा राज्य के विभिन्न भागों में जनसंख्या का यथोचित नियोजन करे, राज्य के प्राकृतिक सम्पति और साधनों के विकास के लिए जंगलों एवं खानों का विकास करे, वर्षा की कमी को पूरा करने के लिए पोखरें, नहरें तथा बाँध का निर्माण करवाये, उद्योग धंधो के विकास का प्रयास करे, कलाकारों एवं विद्वानों को मदद दे, शिक्षा संस्थाओं की सहायता से विज्ञान एवं कला का संवर्धन करे, ध र्मशाला एवं चिकित्सालय बनवाये तथा इसमें सुविधाओं का प्रबन्ध करे, इसके अलावे बाढ़, अकाल, भूकम्प, महामारी इत्यादि व्याधिजन्य दुःखों को दूर करे।

राजा का कर्त्तव्य –मनुस्मृति में राजा को सर्वोच्च सत्ता स्वीकार किया गया है। इसमें कहा गया है कि राज्य की रक्षा एवं वृद्धि के लिए राजा को साम, दाम, भेद एवं दण्ड ये चारों उपायों को अपनाना चाहिए। जैसा कि मनुस्मृति के 7वें अध्याय के 109वें श्लोक में कहा गया है –

सामदी नामुपायानां वतुर्णामपि पण्डिताः।
सामदण्डी प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्रम्निवृद्धये।।

इस ग्रंथ के अंतर्गत कहा गया है कि जिस प्रकार निकौनी (सोहनी) करने वाला किसान खेतों से घास को उखाड़ता है और धान को बचाता है, उसी प्रकार राजा राज्य की रक्षा के लिए शत्रुओं का नाश करें। जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय–7 के श्लोक संख्या–110 में कहा गया है –

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्य परिपन्थिनः।।

मनुस्मृति में राज्य की वृद्धि एवं रक्षा के लिए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जिस प्रकार शरीरधारियों के प्राण भोजन आदि के अभाव में नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार राज्य के पीड़ित करने से राजाओं के भी प्राण प्रकृति कोप आदि से नष्ट हो जाते हैं। अतः राजा का कर्त्तव्य है कि यथावत् राज्य की रक्षा करता रहे। जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय – 7 के श्लोक संख्या – 112 में कहा गया है –

शरीर कर्षणात्प्राणाः पीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः पीयन्ते राष्ट्र कर्षणात्।।

राज्य की छोटी इकाई– मनु का मत है कि शासन सुविधा के लिए 10 गांवों का एक वृन्द या गुट होना चाहिए। ऐसे 10 वृन्दों या 100 ग्रामों का एक मण्डल, जो आजकल के तहसील या तालुके के बराबर होता है। जिले में 1 हजार गाँव अर्थात् 10 तहसीलें होनी चाहिए।

राज्य में अधिकारियों की नियुक्ति– राज्य के अन्दर सुरक्षा एवं शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए गाँव स्तर से लेकर राज्य के सर्वोच्च स्तर तक विभिन्न प्रकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। इनके लिए पद के अनुसार अलग–अलग कर्त्तव्य निर्धारित किये गये थे। राज्य के समृद्धि एवं विकास के लिए कठोर मेहनत करते थे। पद के अनुसार राज्य की ओर से वेतन एवं भत्ते निर्धारित थे।

उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन से यह पता चलता है कि मनुस्मृति में राज्य की संकल्पना का प्रतिबिम्बन स्पष्ट रूप से किया गया है। यहाँ राज्य का उद्देश्य उसके अंग तथा राज्य एवं राजा के कार्यों एवं उसके उत्तरदायित्वों का सांगोपांग अध्ययन मिलता है। राज्य में राजा के दैवीय गुण से युक्त शासन व्यवस्था का सर्वोच्च अंग के रूप में विवेचन किया गया है। साथ ही राजा पर यह बंधन है कि राज्य के सर्वांगीण विकास और आपदाओं के रक्षण के लिए प्रतिबद्ध रहे। राज्य की रक्षार्थ राजा साम, दाम, दण्ड एवं भेद के द्वारा अपने शत्रुओं का विनाश करे तथा इसका समुचित परामर्श भी मनुस्मृति में उल्लेखित है। इस तरह राजा के दैवीय अवधारणा को छोड़कर अन्य सभी शासकीय व्यवस्था आधुनिक शासन पद्धति में द्रष्टव्य है।

संदर्भ सूची

1. प्रो0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर : प्राचीन भारतीय शासन–पद्धति, राज्य की उत्पत्ति और प्रकार, पृष्ठ सं0 19–36 एवं महाभारत के शांतिपर्व, अध्याय 59 में।
2. सुरेन्द्र चन्द्र पन्त : हिन्दु राज्यशास्त्र एवं शासन, मनु , पृ0 सं0 92
3. जी0डी0 पाठक : राजनीतिक चिन्तन का इतिहास
4. शास्त्री पण्डित श्री हरगोविन्द : मनुस्मृति अनुवादक, सातवाँ अध्याय
5. अल्तेकर : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ0 215

****